श्री बालचन्द्राचार्य एवं श्री ऋद्धिसागरोपाध्याय रचित
निर्णय प्रभाकर : एक परिचय

म. विनयसागर

ग्रन्थ का नाम 'निर्णय प्रभाकर' देखकर सोचा कि यह किसी शास्त्रीय चर्चा का ग्रन्थ होगा किन्तु, कर्त्ता के रूप में श्री बालचन्द्राचार्य एवं श्री ऋद्धिसागरोपाध्याय देखकर विचार आया कि सम्भवतः खरतरगच्छ की जो दसवीं मण्डोवरा शाखा श्री जिनमहेन्द्रसूरि से उद्भूत हुई थी, शायद उसी सम्बन्ध में चर्चा हो ।

सहसा विचार आया कि यह शाखाभेद के विचार-विमर्श का ग्रन्थ नहीं हो सकता, क्योंकि इसके प्रणेता श्री बालचन्द्राचार्य मण्डोवरा शाखा के समर्थक थे और श्री ऋद्धिसागरोपाध्याय बीकानेर की गद्दी के समर्थक थे । दोनों के अलग-अलग छोर थे । अतएव एक ही ग्रन्थ के दोनों प्रणेता नहीं हो सकते ।

तब फिर यह विचार हुआ कि इस ग्रन्थ को निकालकर अवश्य अवलोकन किया जाए । ग्रन्थ निकालकर देखा गया तो दिमाग चक्कर खा गया कि यह ग्रन्थ तो श्री झवेरसागरजी और श्री विजय राजेन्द्रसूरिजी के मध्य का है जो कि उनके विचार भेदों के कारण उत्पन्न हुआ हो । सहसा विचार कौंधा कि तपागच्छ के अनेकों उद्भट विद्वान होते हुए भी खरतरगच्छ के विद्वानों को निर्णय देने के लिए क्यों पञ्च बनाया गया और उनसे निर्णय देने के लिए कहा गया ? वास्तव में खरतरगच्छ के दोनों विद्वान अपने-अपने विषय के प्रौढ़ विद्वान थे और गच्छीय संस्कारों के पोषक होते हुए भी माध्यस्थ्य, सामञ्जस्य और समन्वय को प्रधानता देते थे । उनके हृदय में गच्छ का कदाग्रह नहीं था किन्तु शास्त्रीय प्ररूपणा का आधार और अवलम्बन था । अतः इन दोनों निर्णायकों का संक्षिप्त परिचय देना आवश्यक है ।

बालचन्द्राचार्यः- खरतरगच्छ के मण्डोवरा शाखा के अन्तर्गत आचार्य कुशलचन्द्रसूरि हुए, उनके शिष्य उपाध्याय राजसागरगणि, उनके शिष्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपाध्याय रूपचन्द्रगणि और उनके शिष्य श्री बालचन्द्राचार्य हुए। इनका जन्म संवत् १८९२ में हुआ था और दीक्षा १९०२ काशी में श्री जिनमहेन्द्रसूरि के करकमलों से हुई थी। दीक्षा नाम विवेककीर्ति था और श्री जिनमहेन्द्रसूरि के पट्टधर श्री जिनमुक्तिसूरि ने इनको दिङ्मण्डलाचार्य की उपाधि से सुशोभित किया था। ये आगम साहित्य और व्याकरण के धुरन्धर विद्वान थे। काशी के राजा शिवप्रसाद सितारे-हिन्द इनके प्रमुख उपासक थे। अन्तिम अवस्था में तीन दिन का अनशन कर वैशाख सुदी ११, विक्रम् संवत् १९६२ को इनका स्वर्गवास हुआ था।

ऋद्धिसागरोपाध्यायः- महोपाध्याय क्षमाकल्याणजी की परम्परा में धर्मानन्दजी के २ प्रमुख शिष्य हुए- राजसागर और ऋद्धिसागर। इनके सम्बन्ध में कोई विशेष ऐतिह्य जानकारी प्राप्त नहीं है। ये उच्च कोटि के विद्वान् थे, साथ ही चमत्कारी और मन्त्रवादी भी थे। वृद्धजनों के मुख से यह ज्ञात होता है कि दैवीय मन्त्र शक्ति से इन्हें ऐसी विद्या प्राप्त थी कि वे इच्छानुसार आकाशगमन कर सकते थे। विश्व प्रसिद्ध आबू तीर्थ की अंग्रेजो द्वारा आशातना होते देखकर इन्होंने विरोध किया था। राजकीय कार्यवाही (अदालत) में समय-समय पर स्वयं उपस्थित होते थे और अन्त में तीर्थ रक्षा हेतु सरकार से ११ नियम प्रवृत्त करवाकर अपने कार्य में सफल हुए थे, ऐसा खीमेल श्रीसंघ के वृद्धजनों का मन्तव्य है। संवत् १९५२ में इनका स्वर्गवास हुआ था। जैन शास्त्रों और परम्परा के विशिष्ट विद्वान् थे। इन्हीं की परम्परा में इन्हीं के शिष्य गणनायक सुखसागर परम्परा प्रारम्भ हुई जो आज भी शासन सेवा में सक्रिय है।

प्रणेताओं का परिचय देने के बाद वादी और प्रतिवादी का परिचय भी देना आवश्यक है अतः वह संक्षिप्त में दिया जा रहा है :-

वादी-विजयराजेन्द्रसूरिः- इनका जन्म १८८२, भरतपुर में हुआ था। आपके पिता-माता का नाम केसरदेवी ऋषभदास पारख था। इनका जन्म नाम रत्नराज था। यति श्री प्रमोदविजयजी की देशना सुनकर रत्नराज ने हेमविजयजी से यति दीक्षा संवत् १९०४ में स्वीकार की। श्री पूज्य धरणेन्द्रसूरिजी से शिक्षा ग्रहण की और उनके दफ्तरी बने। १९२४ में आचार्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पद प्राप्त हुआ और विजयराजेन्द्रसूरि नामकरण हुआ । उसी वर्ष क्रियोद्धार किया । संवत् १९६३ पौष शुक्ला सप्तमी को आपका स्वर्गवास हुआ । सच्चारित्रनिष्ठ आचार्यों में गणना की जाती थी । अभिधानराजेन्द्रकोष इत्यादि आपकी प्रमुख रचनाएं हैं जो कि आज भी शोध छात्रों के लिए मार्गदर्शक का काम कर रही हैं । इन्हीं से त्रिस्तुतिक परम्परा विकसित हुई, मध्य भारत और राजस्थान में कई तीर्थों की स्थापना की । तपागच्छीय परम्परा में होते हुए भी इनकी परम्परा सौधर्म बृहद् तपागच्छीय परम्परा कहलाती है ।

प्रतिवादी-तपागच्छीय श्री मयासागरजी की परम्परा में गौतमसागरजी के शिष्य झवेरसागरजी थे । (इनके शिष्य श्री आनन्दसागरसूरि जो कि सागरजी के नाम से प्रसिद्ध थे ।) इनके बारे में अधिक जानकारी अन्यत्र उपलब्ध हो सकती है ।

ऐसा प्रतीत होता है कि वादी और प्रतिवादी अर्थात् विजयराजेन्द्रसूरि और झवेरसागरजी में पाँच विषयों के लेकर मतभेद उत्पन्न हुआ, चर्चा हुई और अन्त में निर्णायक के रूप में इन दोनों ने श्री बालचन्द्राचार्य और ऋद्धिसागरजी को स्वीकार किया । क्योंकि ये दोनों आगमों के ज्ञाता और मध्यस्थ वृत्ति के धारक थे । लिखित रूप में कोई प्रमाण प्राप्त नहीं होता है किन्तु उनके द्वारा विवादित पाँच प्रश्नों के उत्तर निर्णय के रूप में होने के कारण यह सम्भावना की गई है ।

रचना संवत् और स्थान

निर्णय-प्रभाकर ग्रन्थ की रचना प्रशस्ति में लिखा है कि श्री जिनमुक्तिसूरि के विजयराज्य में वैशाख शुक्ल अष्टमी के दिन विक्रम संवत् १९३० में इस ग्रन्थ की रचना रत्नपुरी में की गई । जो कि इस निर्णय के लिए श्रीसंघ के आग्रह पर, दोनों को बुलाने पर रतलाम आए थे । ग्रन्थ की रचना उपाध्याय बालचन्द्र और संविग्न साधु ऋद्धिसागर ने मिलकर की है ।

श्रीमच्छ्रीजिनमुक्तिसूरिगणभृद्वर्वर्ति चञ्चद्गुणा
स्फीत्युद्गीर्णयशा गणे खरतरे स्याद्वादनिष्णातधीः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राज्ये तस्य सुखावहे गुणवतामभ्राग्निनन्दक्षितौ (१९३०)
वर्षे राघवलक्षपक्षदिवसे चन्द्राष्टमीसत्तिथौ ॥१॥

या वादि-प्रतिवादियस्य तमसा संपूरिता मालवे,
न्यायान्यायविवेककारकमुखात्प्राचीककुब्सन्निभा-
न्निर्णीतार्थकराप्तये कृतिसभा श्रीरत्नपुर्य्यामभू-
च्चिन्तालाभनिमीलिकालयकरी भव्याविभावोपमा ॥२॥

तस्यां पाठकबालचन्द्रगणिभिर्निर्णन्यभावंगतैः
संवेगिव्रतिऋद्धिसागरयुतैः श्रीसंघहूत्यागतैः ।
सिद्धान्तप्रतिघप्रभाकरनिभः सन्दर्भ एष प्रियः
ग्रन्थान्वीक्ष्य प्रकाशितो मतिमताम्बोधाय निर्णीय च ॥३॥

इन दोनों वादी प्रतिवादियों के मध्य में पाँच विषयों पर मतभेद था।

१. वादी :- परमेश्वर की जल चन्दन पुष्पादिक के द्वारा जो द्रव्य पूजा करते हैं उसका फल अल्पपाप और अधिक निर्जरारूप है ।

प्रतिवादी :- झवेरसागरजी का कथन है कि परमेश्वर की द्रव्यपूजा का फल शुभानुबन्धी प्रभूततर निर्जरारूप है ।

२. वादी:- प्रतिक्रमण और देववन्दन के मध्य में चौथी थुई नहीं कहना चाहिए, वैयावच्चगराणं आदि प्रमुख पाठ भी नहीं कहना चाहिए । सामायिक वन्दित्तु में "सम्मदिट्ठिदेवा दिंतु समाहिं च बोहिं च" इस पद में देव शब्द नहीं कहना । क्योंकि, सामायिक में चार निकाय के देवताओं के सहयोग की वांछा करना युक्त नहीं है ।

प्रतिवादी :- चतुर्थ स्तुति और वैयावच्चगराणं प्रमुख पाठ कहना चाहिए ।

३. वादी :- ललितविस्तराकार श्री हरिभद्रसूरि के समय निर्णय के सम्बन्ध में है । वादी ९६२ वर्ष मानते हैं ।

प्रतिवादी ५८५ वर्ष मानते हैं ।

४. वादी:- साधु को वस्त्ररंजन करना अर्थात् धोना अनाचार है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रतिवादी :- इनका कहना है कि यह अनाचार नहीं है ।

५. वादी:- पार्श्वस्थ आदि को सर्वथा वन्दन नहीं करना ।

प्रतिवादी :- जिसमें ज्ञानदर्शन हो और चारित्र की मलिनता हो उसको भी उस गुण के आश्रित वन्दन करना चाहिए ।

ये पाँचों प्रश्न जब निर्णायकों के समक्ष रखे गए तो उन्होंने पंचागी (मूल निर्युक्ति, चूर्णि, भाष्य, टीका) सहित आगम साहित्य को प्रमाण मानकर, उनके उद्धरण देकर अपना निर्णय दिया । आगम साहित्य और प्रकरण साहित्य के अतिरिक्त अन्य किसी का भी उद्धरण नहीं दिया है । यत्र-तत्र नैयायिक शैली का भी प्रयोग किया है । उद्धरण के रूप में उल्लेखित ग्रन्थों के नाम अकारानुक्रम से दिए गए हैं :-

अङ्गचूलिका, अनुयोगद्वार सूत्र-सटीक, आचारदिनकर, आचारांग सूत्र-टीका सहित, आवश्यक सूत्र निर्युक्ति-बृहद्वृत्ति, आवश्यक सूत्र (नवकार मंत्र-लोगस्स-वैयावच्चगराणं पुक्खरवरदी-सिद्धाणं बुद्धाणं-अरिहंत चेइयाणं आदि) उत्तराध्ययन सूत्र-टीका, उपदेशमाला वृत्ति सहित, ओघनिर्युक्ति-सटीक, औपपातिक सूत्र, चतुःशरण प्रकीर्णक, चैत्यवन्दनभाष्य-अवचूरि-टीका, जीवाभिगम सूत्र-सटीक, ज्ञाताधर्मकथा सूत्र-टीका, कल्पसूत्र संदेहविषौषधी टीका, टीकाएं, नन्दीसूत्र, निशीथ सूत्र भाष्य-चूर्णि-टीका, पंचवस्तु टीका, पंचाशक टीका, पिण्डनिर्युक्ति, प्रज्ञापना सूत्र, प्रतिष्ठा कल्प-उमास्वाति, प्रतिष्ठाकल्प-पादलिप्ताचार्य, प्रतिष्ठाकल्प-श्यामाचार्य, प्रवचनसारोद्धार-सटीक, बृहद्कल्पसूत्र-भाष्य-निर्युक्ति-टीका सहित, भगवतीसूत्र-सटीक, मरणसमाधि, महानिशीथ सूत्र, योगशास्त्र, राजप्रश्नीय सूत्र, ललित विस्तरा (चैत्यवन्दन सूत्र टीका), व्यवहार भाष्य-चूर्णि-टीका, षडावश्यक लघु वृत्ति, सूत्रकृतांगसूत्र, स्थानांग सूत्र सटीक।

इन दोनों निर्णायकों ने अपने निर्णय में श्री झवेरसागरजी के मत को परिपुष्ट किया है और वादी श्री विजयराजेन्द्रसूरि के मत का निराकरण किया है ।

वृद्धजनों के मुख से मैंने यह सुना है कि उक्त निर्णय के पश्चात् श्री विजयराजेन्द्रसूरिजी महाराज ने उक्त निर्णय को पूर्ण मान्यता देने और अपने मन्तव्य को बदलने का प्रयत्न किया । इसी समय मालवा और गोड़वाढ़ के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रमुख श्रेष्ठियों ने आचार्यश्री से निवेदन किया कि "महाराज यह क्या कर रहे हो ? हमने आपके मन्तव्य को स्वीकार कर अपने समाज से विरोध लेकर अलग हुए हैं, ऐसी स्थिति में आप यदि मत बदलोगे तो हम उनके सामने कैसे सिर ऊँचा रखेंगे ?" ऐसा भक्त श्रावकों के मुख से सुनकर अपने मन्तव्य पर ही दृढ़ रहे और अपने विचारों को ही परिपुष्ट किया । तत्त्वं तु केवलीगम्यं ।

प्रति परिचय

इस प्रति की साइज ११.२ x २०.३ से.मी. है । पत्र ७१, पंक्ति १० तथा प्रति पंक्ति अक्षर लगभग ३८ हैं । लेखन प्रशस्ति निम्न प्रकार है :-

॥ग्रंथमान १५५१, इति निर्णयप्रभाकराभिधःसंदर्भः ॥ समाप्तोयः ॥ श्रीरस्तु कल्याणं ॥ श्रीमत्बृहत्खरतरगच्छे श्रीजिनचंद्रसूरिसाखायां: ॥ श्रीमत् १०८श्री ।पांप्रा मुनिश्रीमद्देवविनयजी: ॥ तच्चरणारविंदमधुकर इव: । जवेरचंद्रेण लिपिकृतं दक्षिणप्रांत पूर्णाभिधनग्रात्पार्श्वभागे ग्रामीणतले ग्रामध्ये लिपीकृतं चतुर्मासचक्रे: ॥ संवत् १९३९ का मीती आश्विनशुक्ल नवम्यांतिथौ शुक्रवासरे: ॥ पुण्यपवित्र भवतु ॥ श्रेयभवतु: ॥श्री॥

इस ग्रन्थ में उद्धरण बहुत अधिक दिए गए हैं । प्राचीन हिन्दी भाषा में लिखा गया है । जहाँ-जहाँ राजस्थानी शब्दों का भी प्रयोग किया गया हैं। यह ग्रन्थ पठन एवं चिन्तनयोग्य है । आज के युग में भी यह ग्रन्थ प्रकाशन योग्य है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org